Chapter-5

पंचम अध्याय

"कथानक, पात्रों एवं संवादों में व्यक्त आक्रोश के स्वर"

बीसवीं सदी के पश्चात् हिन्दी उपन्यास धीरे-धीरे विकसित स्थिति में पहुँचने लगा था। बीसवीं शताब्दी के पश्चात् के उपन्यासकारों की केन्द्रीय सोच समय-समय पर बदलती रही हैं। उनके जीवन जीने के मूल्य भी बदलते रहें हैं। इस समय के उपन्यासों के कथानक पात्रों एवं संवादो में व्यक्त आक्रोश में स्वरों को हम निम्नलिखित भागों में अध्ययन करेंगें-

५.१ कथानक में व्याप्त आक्रोश के स्वर

५.२ पात्रों में व्याप्त आक्रोश के स्वर

५.३ संवादों में व्याप्त आक्रोश के स्वर

५.१ कथानक में व्याप्त आक्रोश

उपन्यासों की जब से रचना की जाने लगी है, तभी से उनमें आक्रोश की भावना देखने को मिलती है। सभी व्यवस्थाओं के प्रति जनता का आक्रोश दिखाई पडता है। उपन्यास जगत में कभी कथानक सटीक व सरल रहें हैं, फिर भी उनमें थोडा बहुत आक्रोश देखने को मिल ही जाता है। कथानक संयोजन की कलात्मक-पूर्णता हिन्दी उपन्यास में 'देवकीनन्दन खत्री' की रचनाओं से ही देखने को मिलती हैं। 'प्रेमचन्द' के उपन्यास *'सेवा सदन'* का कथा संगठन इतना अच्छा था कि, 'डॉ. राम विलास शर्मा' ने इसकी बहुत अधिक प्रशंसा की। *'सेवा सदन'* और 'प्रेमचन्द' के परवर्ती उपन्यासों की विशेषता उनके कथा संगठन में ही नहीं बल्कि घटनाओं के स्थान पर पात्रों के कार्य व्यापारों, भावों और विचारों के कुशल संयोजन से जान पडती है। 'प्रेमचन्द' के अपने उपन्यासों के निर्माण के लिए सामग्री के साथ में घटनाओं का कम इस्तेमाल किया। उन्होंने घटनाओं के स्थान पर साधारण कार्य और मनोवैज्ञानिक स्थितियों की मदद से अपने कथानक को उचित रूप प्रदान किया है।

हिन्दी उपन्यास में प्रेमचन्द के आने तक कथानक का सुगठित होना उसकी श्रेष्ठता की कसौटी थी। अतः *'सेवा सदन'* उपन्यास में भी 'प्रेमचन्द जी' के सामने यही कसौटी विद्यमान थी, परन्तु 'प्रेमचन्द जी' ने जल्दी ही यह अनुभव कर लिया कि, सुगठित कथानक उपन्यास का एकमात्र या सबसे बडा लक्ष्य नहीं हो सकता। मनोरंजन प्रधान पाठ्य पुस्तकों के लिए सुगठित कथानक अनिवार्य होता है। पर उपन्यास की संरचना के लिए जिसमें जीवन की विविधताओं और व्यापकता अपेक्षित किया गया है उसमें सुगठित कथानक पूर्ण रूप से नहीं होता है। 'प्रेमचन्दजी' ने*'सेवासदन'* उपन्यास के बाद से ही कथानक में सरलता का प्रयोग आरम्भ कर दिया था, पर *'रंगभूमि', 'कायाकल्प', 'कफन', 'कर्मभूमि'* और *'गोदान'* में कथानक को शिथिल मानने का प्रयास दिखाई पडता है। *'गोदान'*में तो गाँव और नगर की कथाएँ एक-दूसरे से अधिक मिलती ही नहीं है, बल्कि समानान्तर रूप से अग्रसर भी होती है। *'गोदान'* में 'प्रेमचन्द' ने कथानक में आक्रोश की भावना व्यक्त की है। 'प्रेमचन्द' ने दृश्यात्मक और परिदृश्यात्मक प्रविधियों को उनके उत्कर्ष पर पहुँचाते हुए उन्हें नाटकीय प्रविधियों से पात्रों के स्वगतालाप, अतीत का स्मरण, दृश्यो की पात्रों के मन: प्रभाव के रूप में प्रस्तुति कर अत्यन्त प्रभावशाली बना दिया है।

'निर्मल वर्मा' के जिन उपन्यासों का वर्णन हमनें इस पुस्तक में किया है। उसके कथानक में भी हमें विद्रोह दिखाई पडता है। कथा संरचना की दृष्टि से भी 'वर्मा जी' एक सजग उपन्यासकार है। उनकी कथा यात्रा बाहर-भीतर और वर्तमान-अतीत की सीमाओं का अतिक्रमण करती रहती हैं और समय उनके उपन्यासों में धीरे नहीं, बल्कि चक्रीय गति से आगे बढता है। भारतीय कालबोध से सम्पन्न उपन्यास रचना की दीसा में यह एक महत्वपूर्ण प्रयास माना जा सकता है। कथा में आए ब्योरें, सूचना देने या वातावरण की रचना के लिए नहीं परंतु अनुभूतियों को व्यक्त करने के लिए आते हैं। *'रिपोर्टर'* में आपातकालीन स्थिति को लागू किया जाता है, तो वहाँ रहने वाले लोगों में विद्रोह दिखाई देता है, इसी कथानक को लेकर इस उपन्यास की रचना हुई हैं। 'वर्मा जी' मुख्यतः अवसाद, निराशा, अलगाव, बोध, सन्त्रास भाव और मन की अंधकार भरी गुफा में भटकने वाली चेतना के उपन्यासकार है। उन्होंने *'दिन में'* उपन्यास में विश्वयुद्धोत्तरकालीन चेकोस्लोवाकिया की हताशा और अवसाद से भरी पृष्ठभूमि का अंकन किया है, जो एक संवेदनशील भारतीय पात्र 'मैं' के अवलोकन बिन्दू से प्रस्तुत की गयी है। प्रयाग के हमेशा छाए रहने वाले कुहरे, आर्थिक तंगी और अभिव्यक्ति पर लगी पाबन्दी से उत्पन्न हुई घुटन के अनुभूतिपूर्ण अंकन से परिवेश को अत्यन्त अवसादग्रस्त बना दिया है। इस पृष्ठभूमि में अपने बाल आयु के पुत्र के साथ अकेले भटकती रायना है, जो पहले ही विश्वयुद्ध का विनाश झेल चुकी है तथा अवसाद और टूटन की हद तक पहुँची हुई मानसिकता से ग्रसित है। *'लाल टीन की छत'* उपन्यास की कथावस्तु में भी आक्रोश का भाव उत्पन्न होता हुआ दिखाई पडता है। इसमें एक कम उम्र की लडकी के आसपास फैली एकाकी रहस्य से भरी हुई आंतक पूर्ण दुनिया का अंकन किया है। उस लडकी के मन में उत्पन्न उसकी यौन मानसिकता का चित्रण 'वर्मा जी' ने परिवेश, प्रकृति और लगभग निर्जन मानवीय संसार के रहस्य अकेलेपन निर्जनता और आतंक भरे वातावरण का निर्माण किया है। अतः इस कथानक को पढ कर हम कह सकते हैं, कि 'निर्मल वर्मा' के उपन्यासों में अवसाद के साथ विद्रोह का भाव भी दिखाई पडता है।

'गुलशेर खाँ शानी' के उपन्यासों के कथानक में भी आक्रोश दिखाई पडता है। अपने समस्त उपन्यासों में उन्होंने मुस्लिम वर्ग की मध्यमवर्गीय जिन्दगी का अंकन किया है। भारत में साम्प्रदायिक कारणों से मुसलमानों की आबादी शहरों से लेकर दूरदराज गाँवों तक फैली हुई है और यह भारतीय यथार्थ का अंग है। शानी से पहले मुस्लिम जीवन का चित्रण बहुत ही कम उपन्यासकारों ने किया है। इनके उपन्यासों में अनुभव संवेदना और प्रतिक्रियात्मक शिल्प की

मद्द से भारतीय जीवन का एक नया सच अपनी संपूर्णता और गहनता में उद्घाटित हो गया है। इनके उपन्यास *'साँप और सीढी'* (१९८३), *'एक लडकी की डायरी'* (१९७३) और *'फूल तोडना मना है'* (१९८०) आदि सभी में मुस्लिम परिवेश को जीवन्त रूप में प्रस्तुत किया हैं। *'साँप और सीढी'* उपन्यास का कथानक बस्तर क्षेत्र के परिवेश को जीवन्त रूप में प्रस्तुत करता है। इसमें संक्रमण काल से गुजरते हुए आदिवासियों के जीवन की कहानी है, जो उसकी आर्थिक–सामाजिक समस्याओं से उतनी सम्बन्धित नहीं है, जितनी उसके जीवन मूल्यों से है। औद्योगीकरण की चपेट में आए जनजीवन ओर उसके नैतिक आक्रोश भरे सम्बन्ध का चित्रण इस उपन्यास का विषय है।

'राही मासूम रजा' के उपन्यासों का कथानक भी विद्रोह से निर्मित दिखाई पडता है। इनके उपन्यास *'दिल एक सादा कागज'* के अन्दर कथानक के तौर पर यह बताया है, कि जब भारत का विभाजन हुआ, उस समय बहुत से मुसलमान पाकिस्तान को अपना देश कहकर वहाँ चले गए, किन्तु कुछ समय पश्चात् उनके साथ वहाँ हुए भेदभाव से गुस्सा होकर पूर्व पाकिस्तान बांग्लादेश में तब्दील हो गया। ऐसा होने के पश्चात् भी पाकिस्तान व बांग्लादेश की मुसीबतें समाप्त नहीं हुई और उन्हें वापिस हिन्दुस्तान में शरणार्थियों के तौर पर लौटना पडा।'राही मासूम जी' ने हिन्दू–मुस्लिम सम्बन्धों के प्रश्न को एक नये अवलोकन बिन्दू के रूप में पेश किया है और दोनों सम्प्रदायों के बीच उपजे अविश्वास, घृणा, डर आदि भावनाओं को फैलाने के कारणों की खोज के साथ उनके बीच मानवता, प्रेम, भाईचारा आदि के रिश्तों की खोज भी की। कथ्य की दृष्टि से *'कटरा बी आर्जू'* अलग प्रकृति का उपन्यास है। इनमें सन् १९७५ ई. में इन्दिरा गाँधी द्वारा भारत देश में लगायी गयी आपातकालीन स्थिति का वर्णन मिलता है। इसके साथ ही आपात स्थिति के पश्चात् राजनीतिक वातावरण तथा जन–जीवन पर पडे उसके प्रभावों का अंकन किया गया है। इस उपन्यास में हिन्दुओं और मुसलमानों का मिला–झुला सा स्वरूप है, जो एक ही जगह इलाहबाद में रहता है। यहाँ पर दोनों ही धर्मो के लोग आर्थिक रूप से बहुत अधिक ताकतवर नहीं है, बल्कि निम्नवर्ग से सम्बन्ध रखने वाले हैं। साथ ही पढे–लिखे भी अधिक नहीं है किन्तु धोखा, छल, कपट, फरेब से कोसो दूर रहते हैं। यहाँ के रहने वाले लोगों की तमन्नाएँ बहुत अधिक न होकर छोटी–छोटी हैं। आपात स्थिति के पश्चात् से समस्त मौहल्ला रोता हुआ मौहल्ला बन गया। यहाँ के लोगों को दु:स्वप्न ने घेर लिया। आपातकालीन स्थिति पर 'राही मासूम रजा' का व्यंग्य बहुत ही तीखा और कलात्मक जान पडता

है। इस प्रकार यह उपन्यास एक मार्मिक, व्यंग्यपूर्ण राजनीतिक टिप्पणी सा बन गया है। शिल्प की दृष्टि से भी 'राही' के उपन्यासों में एक ताजगी है। 'राही मासूम रजा' ने अप्रत्यक्षता के सिद्धान्त को चुनौती देते हुए, बिना किसी हिचक के कथाकार को पाठक का सहयात्री बना दिया है। 'राही जी' उपन्यास के प्रारम्भ में ही पढनें वाले पाठको से आत्मीयता का सम्बन्ध बना लेते हैं और बिना किसी कठिनाई के उपन्यास में शामिल हो जाते हैं। जहाँ किसी पात्र का अवलोकन बिन्दू अपर्याप्त प्रतीत होता है, वहाँ वे कहानी का सूत्र संभाल लेते हैं। 'राही जी' अपने उपन्यासों में न केवल पढनें वालों को सम्बोधित करते हैं, बल्कि उसे विश्वास में लेकर बहुत सी बातों का खुलासा भी करते हैं। वक्त के साथ उपन्यासकार की यह अनौपचारिकता खटकने के बजाय रूचिकर लगने लगती है। इसी तरह 'राही' ने बडे ही सरल ढंग से अपने औपन्यासिक संसार को पाठको के समक्ष खोलने में समर्थ हुए हैं।

'गिरिराज किशोर' के उपन्यासों में विषय की विविधता विशेष रूप से उल्लेखनीय जान पडती है। उनका प्रथम उपन्यास *'लोग'* इतिहास के उस काल पर आधारित है, जब अंग्रेजी शासन भारत में अन्तिम दौर पर था, उसी समय का वर्णन इसमें किया है। उपन्यास में सामन्ती मानसिकता के बदलते हुए स्वरूप का वर्णन किया गया है। इसके साथ ही राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम के बीच उत्पन्न विरोधों की तरफ भी उपन्यासकार का ध्यान गया है। जेल में जाने वाले सत्याग्राहियों के ए, बी और सी वर्गों का चित्रण उपन्यासकार ने बडे ही यथार्थ रूप में किया है। इनमें 'ए' और 'बी' क्लास के राजनीतिक कैदी तो जेल में रहते हुए भी सभी प्रकार की सुविधाएँ प्राप्त करते हैं, जबकि 'सी' क्लास के कैदी व्यक्तिगत रूप से अधिक त्याग करने पर भी कष्ट व दुखः का जीवन यापन करते हैं। इनमें अनेक ऐसे नेता भी हैं, जो कुर्बानी व तकलीफों से बचकर जेल में भी सुख–सुविधाओं के पीछे भागते हैं। अतः ऐसे नेताओं के प्रति आक्रोश व्यक्त किया गया है।

'गिरिराज किशोर' इतिहास के एक महत्त्वपूर्ण समय को उसकी सभी सामाजिक–राजनीतिक चेतना और विसंगतियों–अर्न्तविरोधों को गहन संवेदनशीलता और तर्कपूर्ण चिंतन के साथ प्रस्तुत करते हैं। 'गिरिराज किशोर' कथानक की दृष्टि से केवल अतीत की यादों में ही नहीं विचरते, बल्कि आज के सवालों और समस्यायों से भी टकराते हैं। इनके उपन्यास *'यात्राएँ'*, *'जुगलबन्दी'* के कथानक की प्रमुख विशेषता यह है, कि इसमें समाज के उत्पीडन और क्रूरता

के शिकार तथा आक्रोश और शिक्षा व्यवस्था के अमानवीय ढाँचे में पिसते-छटपटाते दलित का चित्रण हुआ है।

'भीष्म साहनी' के उपन्यासों में *'तमस'* अत्यधिक महत्त्वपूर्ण उपन्यास है। *'तमस'* का कथानक एक सुअर मारने की कहानी से प्रारम्भ होता है और साम्प्रदायिक हिन्दू-मुस्लिम दंगों का भयानक रूप ग्रहण कर लेता है। *'तमस'* उपन्यास को कथ्य की दृष्टि से देखे तो 'साहनी जी' इस कसौटी पर पूरी तरह खरे उतरते दिखाई पडते हैं। उपन्यास के शुरूआत में ही *नत्थू चमार* द्वारा सुअर मारने का प्रसंग बेहद सजीव व रोचक बन पडा है। शिल्प की दृष्टि से एक फैली हुई कहानी के अन्दर अन्र्तकथाओं की योजना तथा नाटकीय शिल्प के प्रयोग से यह उपन्यास पढनें वालों के मन में गहरा प्रभाव छोडने में समर्थ होता है। 'तमस' उपन्यास क्रे कथानक में हिन्दुओं व मुस्लिमों में मध्य व्याप्त आक्रोश की भावना पर्याप्त रूप से देखने को मिलती है। सुअर मारने पर मुसलमानों को यह संदेह हो जाता है, कि हिन्दुओं ने किसी चालाकीवश हम पर प्रहार किया है। अत: वे हिन्दुओं द्वारा पूजी जाने वाली गाय का वध कर देते हैं, जो हिन्दुओं को रास नहीं आता और दंगा चरम् सीमा तक पहुँच जाता है। हिन्दू व मुस्लिम दोनों ही सम्प्रदाय के लोग अंग्रेजी शासन से लडने की बजाय स्वयं ही आपस में लडते हुए दिखाई देते हैं। पंजाब में इन दंगो ने एक-दूसरे को धर्म पर विश्वास करने लायक नहीं छोडा जिसके कारण पडौसी भी एक-दूसरे के दुश्मन बन गए, विदेशी शासन ने भी इसे रोकने का कोई पुख्ता इन्तजाम नहीं किया और स्वंय इस विद्रोह की आग पर अपनी रोटीयाँ सेकने लगे।

'शिवप्रसाद सिंह' ने अपने अधिकतर उपन्यासों में कथानक के तौर पर ग्रामीण जीवन के चित्रण को ही अपना कथ्य विषय बनाया है। कथ्य की दृष्टि से 'शिवप्रसाद सिंह' के उपन्यास अत्यन्त उत्कृष्ट है। इनके उपन्यास *'गली आगे मुडती है'* १९७९ ई. के कथानक में नवयुवकों में व्याप्त आक्रोश को दिखाया गया है। युवा पीढी का असन्तोष और आक्रोश ही इस उपन्यास का केन्द्र-बिन्दू है। 'शिवप्रसाद सिंह' ने अपने चालीस वर्षो के काशी के अनुभवों के अध्ययन और संवेदना को *'गली आगे मुडती है'* उपन्यास में मूर्त रूप देने की कोशिश की है। इसके पश्चात् *'अतीत की और मुडते हैं'* और *'नीला चाँद'* (१९८८) उपन्यास में भारतीय इतिहास के मध्यकाल की काशी नगरी को देखने का प्रयास करते हैं। इसके लिए उन्होंने १०६० ई. के आसपास की काशी की जिन्दगी का चयन किया, जब *कर्ण कलचुरी* ने *देववर्मा चन्देल* की

कथा और पूरी जूझौती को रौंदकर चन्देल में अपना राज्याभिषेक कराया। 'शिवप्रसाद सिंह' का मध्यकालीन काशी के इतिहास और संस्कृति का अध्ययन कथानक की दृष्टि से उत्कृष्ट है।

'विवेकी राय' के अधिकतर उपन्यासों जिसमें *'श्वेतपत्र', 'लोकऋण', 'सोनामाटी', 'समर शेष है', 'मंगल भवन'* आदि उपन्यासों में आक्रोश व विद्रोह की भावना दिखाई पडती हैं। 'विवेकी राय' का समस्त औपन्यासिक संसार उत्तरप्रदेश के पूर्वांचँल क्षेत्र से सम्बन्ध रखता है। यह पूर्वांचँल क्षेत्र औधोगिक विकास से काफी अधिक पिछडा हुआ क्षेत्र कहलाया जाता है। यह क्षेत्र गाँवों पर आधारित कृषि प्रधान क्षेत्र है। उपन्यासकार ने इस क्षेत्र से बाहर जाकर बहुत ही कम लिखा है। 'विवेकी राय जी' के उपन्यास इस पिछडें क्षेत्र को उसकी सम्पूर्णता में पूरी सर्जनात्मकता के साथ प्रस्तुत किया है। सन् १९४२ ई. के भारत छोडो आंदोलन से लेकर लगभग १९९२ ई. तक, आधी सदीं का समय इस क्षेत्र के जीवन को झकझौंरता और रौंदता किस प्रकार निकल गया है, इसकी प्रतीती 'विवेकी राय' के उपन्यासों के कथानक से सहज ही हो जाती है। 'विवेकी राय' के सभी उपन्यासों का कथा क्षेत्र पूर्वाचँल है और उन्हें इस अँचल के गाँवों, खेत-खलिहानों, सीवान, मिट्‌टी, फसलों, राहों-पगडंडियों, नदी-नालों, पंचायतों, पाठशालाओं, पुस्तकालयों का ही नहीं, बल्कि लोगों के जीवन जीने के तरीके, उनकी आर्थिक स्थिति, जीवन का संघर्ष, लोक संस्कार, समाज में उत्पन्न विसंगतियाँ आदि का भरपूर मात्रा में परिचय मिलता है। गाँव की मिट्‌टी और प्रकृति से 'विवेकी राय' अद्‌भूत रूप से जुडे हुए उपन्यासकार है। *'पुरूष-पुराण'* उपन्यास की प्राचीनता और नवीनता के संक्रमण काल को सहन करता एक जिन्दा नर कंकाल है, जो पुत्रवधू के रूप में स्थिर, कर्मठ, स्वावलम्बी जीवन व्यतीत करता हैं। इस उपन्यास के कथानक में नये और पुराने का विद्रोह और संघर्ष काव्य के रूप में प्रस्तुत हुआ है, इस बात में निर्देश है, कि उसका पुरानापन नयेपन से घबराकर भी टूटता नहीं है। लोक जीवन का बोध पूरी कृति में व्याप्त है। स्मृति के मोहरे में विलुप्त होती कहावतें, लोरियाँ, लोकोक्तियाँ, परम्पराएँ और आस्थाएँ, मुहावरों के द्वारा उजागर होकर नये आशय जो प्राप्त करती है। अत: यह उपन्यास भारतीय ग्राम संस्कृति का प्रतीक है, जिसमें उपन्यासकार की अटूट आस्था है। 'विवेकी राय' के एक अन्य उपन्यास *'लोकऋण'* के कथानक में परम्परागत ग्रामीण संस्कृति और आधुनिक सभ्यता के आयातित मूल्यों से निर्मित संस्कृति के बीच उत्पन्न तनाव का सफलता के साथ अंकन हुआ है। यह तनाव और विद्रोह उपन्यास के चरित्रों में भी व्यक्त हुआ है। *'सोना माटी', 'समर शेष है'* और *'मंगल भवन'* आदि उपन्यास कथानक की दृष्टि से एक-दूसरे के

पूरक कहे जा सकते हैं। इस सभी उपन्यासों की कथा गाजीपुर और बलियाँ जिलों में विभिन्न गाँवों में फैली हुई है। जिसके माध्यम से उपन्यासकार ने आजादी के बाद पूर्वाचँल के ग्रामीण जीवन को उसकी समग्रता में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। *'सोना माटी'* उपन्यास में वहाँ की मिट्टी की विशेषता, लहराती फसलों की सुन्दरता और सोना उगलने की क्षमता, बाढ के बहाव में बहा ले जाने के स्वभाव आदि का सजीव अंकन विस्तार के साथ किया गया है। 'विवेकी राय' ने ग्रामीण जीवन में उत्पन्न हुए समकालीन मूल्य संकट का चित्रण बडी लगन से किया है, पर वह किसी भावुकतापूर्ण दृष्टि का परिचायक नहीं है। वहाँ के गाँवों में गरीबी अधिक निवास करती है। आर्थिक तंगी के चलते आपस में विद्रोह की स्थिति भी उत्पन्न हो जाती है। 'समर शेष है' उपन्यास एक विद्रोहकारी कथानक पर आधारित उपन्यास है। इसके कथ्य के क्रेन्द्र में पूर्वांचँल क्षेत्र के किसान और मजदूर लोग हैं, जो बहुत अधिक समय तक शोषण और अन्याय सहन करके अब संघर्ष व विद्रोह की मुद्रा में तनकर खडे हो जाते हैं। क्रान्तिकारियों के नेतृत्व में मध्यवर्ग के लोगों ने भूमिपतियों तथा शोषण और अन्याय पर आधारित व्यवस्था के खिलाफ संघर्ष छेड देते है।

'कृष्णा सोबती' के उपन्यास *'दिलो-दानिस'* और *'सूरजमुखी अँन्धेरे के'* का कथानक साहसी लेखन के अर्न्तगत आता है। इन दोनों उपन्यासों की चर्चा विशेष रूप से लेखिका के साहसीपन के उदाहरण के रूप में हुई है, क्योंकि इससे पहले हिन्दी साहित्य में किसी महिला उपन्यासकार द्वारा किसी स्त्री के स्वराचार का इतनी सफाई से और मुँहफट रूप में चित्रण नहीं हुआ था। सातवें दशक के पहले नारी लेखिकाओं के लिए काम-व्यापार पर खुले रूप से लिखना हिम्मत का काम माना जाता था। 'कृष्णा सोबती जी' ने यह साहस दिखाया और साहित्य जगत में उनकी अच्छी खासी चर्चा भी हुई। इन उपन्यासों में मध्यम वर्ग के परिवार की एक मुँहफट विस्फोटक युवती की उथल-पुथल मचा देने वाले चित्रण का अंकन किया गया हैं। 'कृष्णा सोबती' के उपन्यासों का कथ्य नीरस, बासी और थमी हुई मध्यमवर्गीय संस्कृति के विरूद्ध सब कुछ दाँव पर लगा देने वाली स्त्री का विद्रोह है। वह नारी परम्परागत नियमों से लडती है और उसे अंगूठा दिखाती है। 'कृष्णा सोबती' के अन्य उपन्यास *'जिन्दगीनामा'* १९७९ ई. के कथानक में पंजाब राज्य में बसने वाले किसानों व गाँव वालों के जीवन का चित्रण मिलता है। इनकी मेहनत, मजदूरी व आर्थिक बेहाली को इस उपन्यास में सच्चाई के साथ प्रस्तुत किया गया है। इस प्रकार *'जिन्दगीनामा'* उपन्यास अपने शीषर्क की सार्थकता प्रस्तुत करता है। इसमें किसानों व

मजदूरों के विद्रोह का भी यथार्थता के साथ अंकन किया गया है। इसका कथा संसार चित्रों के एलबम के रूप में है, जिसमें लय और प्रवाह बखूबी नजर आते हैं। संवेदनात्मक गहराई और तीव्रता के कारण औपन्यासिक संसार अच्छा बन पडा है। मानवीय सम्बन्धों की मोहकता, कटुता, जटिलता या किसी प्रकार की वैचारिक चिन्ता के कारण यह उपन्यास आकर्षक हो गया है। वहाँ के लोगों के लोकगीतों, बच्चों के गीतों, किस्से-कहानियों, चुटकूलों आदि की बहुलता उपन्यास पर गहरा प्रभाव पैदा करते हैं। लोक प्रथाओं का विवरण भी अत्यधिक रोमांचक बन पडा है। आक्रोश की भावना उपन्यास में कई जगह देखने को मिलती है।

'महेन्द्र भल्ला' के उपन्यासों का कथ्य भी आक्रोश व विद्रोही भावना से ओतप्रोत नजर आता है, जिसमें *'दूसरी तरफ', 'उडनें से पेश्तर',* और *'तीसरी उदासी'* प्रमुख है। इनका कथानक आधुनिक दाम्पत्य जीवन है, जिसको लेकर आपस में तनाव व विद्रोह की स्थिति उत्पन्न हो जाती हैं। आधुनिक बोध के पति-पत्नी एक-दूसरे को भी अन्य वस्तुओं की तरह ही देखने लगते हैं, जो पुरानी हो जाने पर ऊबाऊ हो जाती है। इस भाव-बोध में विवाह एक गैर जरूरी बन्धन है, जो सुंदर को असुंदर और प्रेम को ऊब में बदल देता है। उसके लिए प्रेम और काम विषयक नैतिकता का कोइ अर्थ नहीं है। आधुनिक जीवन की इस वास्तविकता को उपन्यास में बडे ही रोचक रूप में प्रस्तुत किया है। *'दूसरी तरफ'* उपन्यास के कथ्य में नवीनता दिखाई देती है। इसमें भारतीय लोग अपनी जीविकोपार्जन के लिए इंग्लैंड जैसे अन्य देशों में चले जाते हैं, किन्तु वहाँ जाने के पश्चात् भारतीयों की भयावह व निर्मम स्थिति का वर्णन 'महेन्द्र भल्ला' ने किया है। इस अनुभव संसार को लेखक ने *केवल* नामक युवक के अनुभव की खिडकी से दिखाने का प्रयत्न किया है। 'महेन्द्र भल्ला जी' केवल निरीक्षण और चिन्तन में भी पर्याप्त तटस्थता बरतते दिखाई पडते हैं। अंग्रेजो के जीवन में जो कुछ भी अच्छा, उदात्त व सराहनीय है, उसे वह स्थिरता के भाव से पेश करते हैं। अनुभव में अछूतेपन, उसमें निश्चित प्रमाणिकता तथा शिल्प और भाषा के सफल प्रयोग के कारण यह उपन्यास एक उल्लेखनीय उपन्यास बन गया। 'महेन्द्र भल्ला' के अन्य उपन्यास *'उडनें से पेश्तर'* और *'तीसरी उदासी'* कथानक की दृष्टि से दूसरे उपन्यासों के ही विस्तार है। इन उपन्यासों में भी भारतीयों पर हो रहे जुल्म के खिलाफ आवाज उठाई जाती है और अन्त में वह भारत लौटने का निर्णय कर लेते हैं। वहाँ से लौटकर केवल यहाँ विरोधाभासपूर्ण स्थितियों को झेलता हुआ यहीं पर बसने का निर्णय करता है। 'महेन्द्र जी' के इन सभी उपन्यासों में प्रवासी जीवन की विडम्बनाओं और त्रास को झेलता हुआ

एक दुख देने वाला मानसिक द्वन्द्व दिखाई पडता है। भारतीयों के मन में उनके प्रति विद्रोह एवं आक्रोश की भावना स्पष्ट रूप से दिखाई पडती है।

'विश्वम्भरनाथ उपाध्याय' के उपन्यासों में भी आक्रोश की झलक दिखाई पडती है। उनके उपन्यास *'रीछ'* में रीछ को प्रतीक बनाकर सामाजिक शोषकों का अंकन किया गया है, जो लोगों के तलवें चाटकर उनका लहू पी जाते हैं। चाँदनी गाँव के उच्च जाति के लोग पूँजीपति, महाजन, मुखिया सभी लोगों का खून चूसनें में लगे हैं, उसी गाँव का एक युवक उन सभी के साथ संघर्ष करता है। उसकी मुसीबतों का उपन्यासकार ने अच्छा अंकन किया है। इसमें संवेदना की जगह वैचारिक प्रतिबद्धता और वैज्ञानिक चिन्तन की जगह आवेशात्मक क्रान्तिकारिता प्रमुख हो गयी है। *'पक्षधर'* (१९८३) उपन्यास में उपन्यासकार ने अपने वामपंथी विद्रोह को उसी प्रकार की आक्रोशित भाषा मे उपन्यस्त करने का प्रयत्न किया है। उपन्यास में उत्पन्न समस्त लडाई अर्थ संस्कृति के खिलाफ है, जिन्दगी के हर क्षेत्र में युनिवर्सिटी में, गोष्ठी में, पार्क में और यहाँ तक कि जंगल में भी युद्ध करने को तत्पर गुरिल्लें व्यवस्था को पलटने में क्रियाशील है। यहाँ पर भ्रष्ट नेताओं को गुरिल्लें की पदवी दी गई है। 'भूतनाथ' (१९८६) उपन्यास के कथ्य में एक जनता का हित चाहने वाले, लडाकू पत्रकार का अंकन किया है। यह लडाकू पत्रकार विचारों से व्यवस्था का विरोधी, क्रान्तिकारी कारनामों से भंडाफोड करता है। संगठन द्वारा व्यवस्था का बदलने का संकल्प भी उपन्यास में आक्रोशित भावना द्वारा किया गया है। 'उपाध्याय जी' ने अपने समस्त उपन्यासों में उग्रवाद, आतंकवाद, गोरिल्ला युद्ध, जनवादी क्रान्ति और संगठित प्रतिरोध सम्बन्धित विचारधारा को सामाजिक न्याय और मानवता के व्यापक परिप्रेक्ष्य में देखने का प्रयास किया है। अपने उपन्यासों में 'उपाध्याय जी' उग्र मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित है और वे इस विचारधारा के उदाहरण के रूप में अपने कथा-संसार की रचना करते हैं। इस कारण इनका कथासंसार आश्वस्तकारी और पाठक की संवेदना को जगाने में समर्थ हो पाया है।

'गोविन्द मिश्र' के उपन्यासों के कथा-संसार के रूप में हमें कठोर यथार्थ की भावना दिखाई पडती है। जिससे अन्ततः विद्रोह का स्वर मुखरित हो उठता है। *'लाल पीली जमीन'* (१९७६) उपन्यास में 'गोविन्द मिश्र' ने एक पिछडें हुए कँस्बाई क्षेत्र के सामुहिक जीवन का भयावह हिंसक चित्र प्रस्तुत किया है। किसी बडे उद्देश्य के लिए एकत्रित होकर शासन व्यवस्था सें संघर्ष करने का विवेक और उत्साह किसी में नहीं है। सही राजनीतिक समझदारी के अभाव में राजनीति, हिंसा का पर्याय बनकर रह जाती है। जिसकी अपनी कोई दिशा नहीं होती और

हिंसा ही आक्रोश का कारण बन जाती है। 'गोविन्द मिश्र' के दूसरे उपन्यास *'हुजूर दरबार'* १९८१ ई. में 'मिश्र जी' ने अपने ही परिचित क्षेत्र की एक रियासत को कहानी बनाकर देश की स्वतंत्रता के कुछ समय पहले के कालक्रम पर राजा-रजवाडें की जीवन-पद्धति एवं मानसिकता का चित्रण किया है। उपन्यासकार भारतीय लोकतंत्र शासन व्यवस्था की विकृतियों से इतने विरूद्ध और प्रतिक्रियावादी हो गए हैं, कि पुराना राजतंत्र उन्हे अंतिम शरण के रूप में दिखाई पडता है। उपन्यासकार ने राजतंत्र के पराभय को गहन मार्मिकता और पीडा के साथ अंकन किया है। *'धीरे समीरे'* १९८८ ई. उपन्यास में 'गोविन्द मिश्र' का कथानक एक नये अन्दाज में प्रस्तुत हुआ है। इसकी कथा प्रस्तुति जीवन सम्बन्धी मुद्दे तथा अनेक प्रश्नों को हमारे सामने रखती है। ये सवाल आस्था और आधुनिकता, समर्पण और स्वार्थ, सहज जीवन और उपभोक्तावाद, अभाव की पूर्णता और सम्पन्नता की पोल, साहित्य रचना और साहित्यिक छद्म में सभी नियति और मुक्ति के लिए विद्रोह आदि से जुडे हैं और उपन्यासकार ने अपने पूरे विश्वास और पूर्वाग्रह के साथ इन्हें प्रस्तुत किया है। 'गोविन्द मिश्र' यह मानते हैं ,कि भारतीय मानस की मूलभूत उर्ध्वमुखी चेतना, जो आध्यात्मिक पृष्ठभूमि के कारण बरकरार है। समाज जो उपभोक्तावाद के सैलाब से बचा रही हैं, उनके अनुसार आधुनिकता की चमक में भारतीय आध्यात्मिक अनुभव धूमिल पड गया है, पर उससे पूर्णत: निसंग नहीं किया जा सकता। अपने इन विचारों को उपन्यासकार ने वज्र-परिक्रमा की कथा के माध्यम से व्यक्त किया है। इनके उपन्यासों के कथानक में विचारों संवेदनाओं और मन:स्थितियों की जटिलता नहीं है। अत: उपन्यास सरल बन पडे हैं। 'गोविन्द जी' के उपन्यासों के कथानक में विद्रोह का स्वर दिखाई पडता है।

'मन्नू भंडारी' के उपन्यासों का कथानक की नवीनता लिए हुए हैं। *'महाभोज'* का कथ्य राजनीतिक परिवेश से सम्बद्ध है। जिसमें राजनीति में प्रविष्ट मूल्यहीनता, शैतानियत और नैतिक सडाँध का अत्यन्त यथार्थ और सजीव चित्र प्रस्तुत किया है। पूँजीवादी व्यवस्था समाजवादी शासन पर काफी भारी पडी और इस प्रकार इनके भी कथानक में राजनीति के प्रति विद्रोह लक्षित होता है।

'ममता कालिया' के उपन्यासों में भी नारी संहिता के एक बडे ही क्रूर विरोधाभास को प्रस्तुत किया गया है। *'बंजर'* (१९७१) उपन्यास में *संजीवनी* की प्रेमाभूति के द्वारा ममता कालिया ने नारी नियति को परिभाषित करने की एक अच्छी कोशिश की है। लेखिका के विजन में विद्रोह ही दिखाई देता है। इनके उपन्यासों में *'एक चूहे की मौत'* (१९७१) उपन्यास का

कथानक आधुनिकतंत्र या व्यवस्था की क्रूरता विरोधाभाष और उसमें पिस रहे आम आदमी की जिन्दगी का अंकन किया है।

'जगदीश चन्द्र' के उपन्यासों में जाट किसानों पर महाजनों पुलिसकर्मियों तथा कचहरी के अमलदारों का दयनीय दमन का अंकन किया गया है, इसका चित्रण कथाकार ने करूणा भरे व्यंग्य व आक्रोश के साथ किया है। जाट किसानों की मानसिकता उनके जीवन जीने के तौर-तरीके तथा कथन का यथार्थ और मर्म सम्बंधी चित्रण उपन्यास में मिलता है। सामन्ती समाज व्यवस्था किस प्रकार अपने ही मध्य हुए अर्न्तविरोधों में चरमराकर फट और बिखर रही हैं। इसी का आक्रोश यहाँ प्रकाशित हुआ है।

'निर्मल वर्मा' और 'मोहन राकेश' के उपन्यासों में भी विद्रोह की भावना दिखाई पडती हैं। कथानक में कथा के आयाम को शून्य के पास लाने का प्रयास किया गया है तथा पात्रों से उनके नाम छीन लिए गए है। 'निर्मल वर्मा' के *'लाल टीन की छत'*, *'एक चिथडा सुख'*, *'रात का रिर्पोटर'* आदि उपन्यासों में कथ्य के रूप में अवसाद, निराशा, अलगाव, सन्त्रास बोध, असुरता बोध, आक्रोश और मन की अन्धकार भरी गुफा में भटकने वाली चेतना आदि की प्रमुखता से मनः में उत्पन्न स्थितियाँ पात्रों के कार्य व्यापारों के रूप में नहीं बल्कि-अन्तरालाप के रूप में व्यक्त किया गया है। परिवेश के रूप में निर्जन प्रकृति के साथ-साथ उसी रहस्यमय स्थान या कोई दो-चार पात्रों वाली पहाडी जगह होती है, स्त्री-पुरूष के मध्य उत्पन्न हो जाने वाले अन्तराल और उससे मानसिक स्तर पर जूझतें रहने की कहानी व्यक्त की गयी है। इन उपन्यासों में प्रतिक्रियाओं और स्मृतियों, प्रश्नों और उसके रूप में कथा का अमूर्त संसार निर्मित किया गया है। इसमें कथानक आक्रोश से ओतप्रोत दिखाई पडता है।

'चित्रा मुद्गल' का उपन्यास *'एक जमीन अपनी'* १९९० ई. में प्रकाशित हुआ। इसकी केन्द्रीय कथा बम्बई के महानगरीय परिवेश में आधुनिकता के तिकडम आदि के मध्य प्रस्तुत नारी-विमर्श है। सभी का व्यवस्था के प्रति विद्रोह ही कथानक में परिलक्षित होता है। 'मेहरून्निसा परवेज' के उपन्यासों का कथानक मूलरूप से मुस्लिम समाज से जुडा हुआ है। मुस्लिम समाज और उसके धर्म को लेकर हो रहे विद्रोह का अंकन ही मिलता है।

'संजीव' के उपन्यास *'किसनगढ के अहेरी'* १९८१ ई., *'सर्कस'* १९८४ ई. और *'सावधान नीचे आग है'* १९८६ ई. का कथानक सामन्ती अहेर वृत्ति पर और सर्कस-कर्मियों के

जीवन पर आधारित उपन्यास है। *'सावधान नीचे आग है'* झरिया क्षेत्र की कोयला खान की एक दुर्घटना को केन्द्र में रखकर कोयला माफियाओं, ठेकेदारों और उनके दलालों के स्वार्थी, शोषक और क्रूर रूप का विद्रोही चित्रण किया गया है। खदान के अन्दर काम करने वालें मजदूरों और कारीगरों की त्रासद स्थिति और सत्ता-व्यवस्था के निर्मम चेहरे का अंकन् किया है। खान की दुर्घटना की दहशत और उसके जुगुप्साजनक यर्थाथ का अंकन उपन्यासकार ने उसके सूक्ष्म ब्योरों के साथ किया है।

सन् १९७१ ई. से १९९० ई. के मध्य समय में अधिकतर उपन्यासों के कथानक विद्रोह एवं आक्रोश की विभिन्न मनः स्थितियों से ओतप्रोत है। अतः १९७१ ई. से १९९० ई. के मध्य उपन्यासों के कथानक के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है, कि कई उपन्यासों के कथानक के विद्रोह एवं आक्रोश हमें स्पष्ट तौर पर देखने को मिलता है ।

५.२ पात्रों में व्याप्त आक्रोश

सन् १९७१ ई. से १९९० ई. के मध्य उपन्यासों के पात्रों में निहित आक्रोश का अध्ययन हम इस भाग में स्पष्ट तौर पर करेंगे। इस समयाअवधि के पात्रों में भी विद्रोह एवं आक्रोश देखने को मिलता है। इसमें 'शानी' के उपन्यास *'काला जल'* का केन्द्रीय पात्र 'मैं' जो कथा प्रस्तुति का मुख्य अवलोकन बिन्दू है, छोटी फूफी के यहाँ फातिहा पढनें जाता है और मरहूम पूर्वजों की फेहरिश्त से एक नाम लेकर उसकी कहानी सुनता है। इस प्रकार मिर्जा, करामात बेग, बिट्टी रौटाईन उर्फ इस्लाम बी उर्फ बी दरोगन, रज्जू मियाँ, रोशन, सालिहा उर्फ सल्लो आदि की कहानियाँ विद्रोह के रूप में सामने आती हैं। इन कहानियों में आए पात्रों को स्वतन्त्र, विशिष्ट और निजी व्यक्तित्व प्रदान करने की अद्‌भुत क्षमता 'शानी' में है। 'शानी' के पात्रों की भाषा सर्जनात्मक विशेषताओं से भरपूर है। पात्रों के जो संवाद बोले गए हैं, वो विद्रोही भावना से ओतप्रोत है ।

'शिवप्रसाद सिंह' के उपन्यासों के पात्र भी विद्रोही भावना से ग्रसित है। उपन्यासकार ने इस पात्र परिवार को केन्द्र बनाकर शौनक, घोर आंगिरस, गालव, सिन्धुजा, धन्वन्तरि, माधवी, श्रीर्घतय, वारदव, भीमर, गोशल, वामदेव, गौतम, राम भार्गव, कार्तवीर्य, अर्जुन, सुमेघा, देवाहुति भार्गव, सुदर्शन, जनक, आदि वैदिक काल के कल्पित पात्रों की सहायता से आकर्षक कथा संसार की सृष्टि की है। जिसके माध्यम से उपन्यासकार के समस्त उपन्यासों से वैदिक संस्कृति और उसमें काशी की भूमिका का चित्रण हुआ है। उनके उपन्यास *'नीला चाँद'* के पात्रों में भी विद्रोह दिखाई पडता है। ऐतिहासिक तथ्य के अंकन में 'शिवप्रसाद सिंह' का हिन्दुत्व प्रेम अत्यन्त स्पष्ट है। उपन्यास के केन्द्रीय पात्र आनन्द वासेक तथा त्रैलौक्य मल्ल, राजा अजय हरि, सदाशिव भट्ट, भोजदेव चन्देल, मयूख काका आदि राजपुरूष और प्रशिक्षित सेनानायक ही नहीं, चंडीश्वर और महुआ जैसे सामान्य नागरिकों की वीरता और बलिदान भी इसी तथ्य की पुष्टि करते हैं। जुझौति का साधारण जनसमुदाय भी अपने त्याग और वीरता से देशप्रेम की भावना का परिचय देता है। इनकी तुलना में उपन्यास के मुस्लिम पात्र बर्बर, क्रूर और खल व विद्रोही रूप में प्रस्तुत किए गए हैं।

'विवेकी राय' के उपन्यास *'सोना माटी'* के पात्र रामरूप बडे ही आश्चर्य से सोचता है, कि भूमिपति सामन्त, नौकरशाही, अधिकारलोलुप नेता, मूल्यहीन नयी पीढी और अवसरवादी

बुद्धिजीवी सभी असहाय जन के शोषण में सहभागी है। यहाँ तक कि खोरा जैसा जनकवि भी अन्ततः बिक जाता है, या शोषक वर्ग की चालाकी का शिकार हो जाता है। रामरूप अपनी समस्त निष्ठा, संवेदना, असंतोष एवं विद्रोही भावना के चलते सभी से शोषण का बदला लेने का विचार करता है। रामरूप अपने निर्दोष भाईयों के लिए शोषण और भ्रष्टाचार की मार सहते हैं। 'विवेकी राय' के अन्य उपन्यास *'समर शेष है'* १९८८ ई. में पात्रों की सृष्टि की दृष्टि से उल्लेखनीय है। इस उपन्यास की केन्द्रीय पात्र जयन्ती है। जयन्ती ने सभी सामाजिक मान्याताओं और रूढियों से विद्रोह करती हुई बिना विवाह किए ही रहने का संकल्प लेती है। इतना ही नहीं वह सदियों से पिछडें वर्ग के शिकार और दबाए गए किसानों, स्त्रियों व मजदूरों में गलत व्यवस्था से लडने के लिए उत्साह और जोश उत्पन्न करती हैं। सुराज, रामराज, और सन्तोषी पंडित के रूप में 'विवेकी जी' ने जीवन्त और जुझारू, एवं विद्रोही पात्रों की सृष्टि भी की है। अमरेश, प्रभुनाथ, रामराज आदि सभी जटिल चरित्र है जो युवा पीढीं के चरित्र और मानसिकता का प्रतिनिधित्व करते हैं।

'विश्वम्भरनाथ उपाध्याय' के उपन्यास *'भूतनाथ'* १९८६ ई. में एक कृष्ण गोपाल नामक जन हितेषी मगर प्रकृति से विद्रोही व लडाकू पत्रकार का अंकन किया है। यह पत्रकार क्रान्तिकारी तथा व्यवस्था के अनैतिक कामों का खुलकर विरोध करता है। इस पात्र ने एक ऐसे संगठन का निर्माण किया जो व्यवस्था को मिल कर बदल सकें। इस उपन्यास के पात्र कृष्ण ने देश में फैल रहे भ्रष्टाचार, बेईमानी, उपभोक्तावाद, शोषण और अत्याचार का विद्रोह कर शान्ति स्थापित करनी चाही। अतः हम कह सकते हैं, कि 'विश्वम्भरनाथ' के औपन्यासिक पात्रों में भी विद्रोही भावना दिखाई देती है।

'मन्नू भंडारी' के उपन्यास *'महाभोज'* १९७४ ई. के पात्र भी आक्रोशित दिखलाए गए है। 'मन्नू भंडारी' ने सुकुल जी, दा साहब, पांडेय जी, राव, आपा साहब आदि पात्रों के माध्यम से, जो अनेक प्रकार के मुखौटे लगाए, सत्ता की लडाई लडने वाले राजनीति नियमों का प्रतिनिधित्त्व करते हैं, इस सच्चाई का उद्घाटन किया है। दूसरी तरफ उपन्यास के अच्छे पात्र बिसेसर, बिन्दा, हीरा, लोचन भैया, एस. पी. सक्सेना जैसे पात्र हैं, जो इस व्यवस्था में पिस रहे हैं और विद्रोही स्थिति में आ खडे होते हैं। ऊपर से सन्त दिखने वाले अन्दर से पूर्णरूप से शैतान राजनीतिज्ञ के रूप में दा साहब का चरित्र बडा ही आश्चर्य चकित कर देने वाला है। दा साहब के रूप में 'मन्नू भंडारी' ने एक ऐसा पात्र खडा किया है, जो कि हिन्दी उपन्यास के कुछ

अमर पात्रों में गिनती करने में आता है। वह अन्दर से एक दानव के जैसा बाहर से साधु देवता जैसा वेश धारण करता है। इस प्रसंग में दा साहब अपने साधुता भरे विचारों में दत्ता बाबू से कुछ इस प्रकार कह रहे हैं –

> **"दुहाई गरीबों की सब देते हैं, पर उनके हित की बात कोई नहीं सोचता। जनता को बाँट कर रखो.... कभी जात की दीवारें खींचकर तो कभी वर्ग की दीवारें खींचकर? जनता का बँट -बिखरापन ही तो स्वार्थी राजनेताओं की शक्ति का स्त्रोत है। कुछ गलत कर रहा हूँ मैं ?"** *(महाभोज, पृ. ८५)*

अर्थात् दा साहब बाहरी दिखावे से आम जनता के हो रहे शोषक का विद्रोह करते हुए दिखाई पड रहे हैं। हम अन्य प्रसंग में सुकुल बाबू जनता की भलाई के लिए कह रहे हैं, कि

> **"तैश के साथ- खडा हुआ हूँ आप लोगों के हक भी लडाई लडने के लिए। बिसू की मौत का हिसाब पूछने के लिए। बात केवल बिसू की मौत की नहीं है...यह आप सब लोगों के जिन्दा रहने का सवाल है... अपने पूरे हक के साथ जिन्दा रहने का। यह मौत कुछ हरिजनों की या एक बिसू की नहीं... आपके जिन्दा रहने के हक की मौत है। आपका हक जरा से स्वार्थ के लिए गाँव के धनी किसानों के हाथ बेच दिया गया है... और यही हक मुझे आपको वापस दिलवाना है। जुल्म ने आप लोगों के होसले तोड दिए हैं, इसलिए मैं लडूँगा, आपकी यह लडाई... आखरी दम तक लडूँगा। आप लोग साथ देंगे तो भी... नहीं देंगे तो भी...।" (महाभोज, पृ. ३३)**

इस उपन्यास *'महाभोज'* के एक पात्र सुकुल बाबू जनता के हमदर्द बनकर भ्रष्ट व्यवस्था के खिलाफ विद्रोही व आक्रोश भरी भावना लेकर उठ खडे होते हैं। वह सभी गरीबों का हक उन्हें लौटाना चाहते हैं।

'कृष्णा सोबती' के उपन्यास *'दिलो-दानिस'* में पात्रो को विद्रोही भावना के साथ अंकन किया है। 'कृष्णा सोबती' ने इस परिवेश से जुडी तकलीफों, उलझन भरी मन:स्थिति मनोभावों का अपने पात्रों द्वारा बडा ही मार्मिक अंकन किया गया है। इसकी प्रमुख पात्र कुंटुम प्यारी है, जो हवेली की मुख्य पात्र है। कुंटम प्यारी हवेली में रहने वाले समस्त पात्रों का प्रतिनिधित्व करती

है। दूसरी पात्र रजिया बानों है, जो वहाँ के फराशतखाने का प्रतिनिधित्व करती है। विशेष रूप से रजिया बानों के चरित्र निर्माण में उनकी रचनाशीलता की उत्कर्षता का परिचय मिलता है। रजिया बानों पात्र के परिस्थितिगत मानसिक द्वन्द्व को उभारने में सोबती जी को अद्‌भुत सफलता मिली है। उसके चरित्र की परिणति जिस तेजस्विता में होती है, उसके सामने परम्परागत पत्नी का कद बहुत छोटा हो जाता है। परिवारिक संहिता, पत्नी और प्रेमिका के बीच अधर में झूलता कृपा नारायण पात्र का चरित्र भी बहुत ही जोरदार और अपनी परिणति में अत्यन्त विद्रोही है।

'मेहरून्निसा परवेज' के उपन्यास *'कोरजा'* में स्त्री की विद्रोह भरी भावना का अंकन किया है। इसकी पात्र शब्बों,कम्मों और मोना है, जो इस समाज से अनवरत संघर्ष करती रहती हैं और अन्तत: समाज उन्हें निगल लेता हैं। शब्बों पात्र इतनी गरीब है, कि उसने अपनी गरीबीपन से दुखी हो कर स्वयं को आग में झौंक दिया है। दूसरी पात्र कम्मों है, जो प्यार के लिए स्वयं को खत्म कर लेती है। और तीसरी पात्र मोना है, जो दूसरो को सुख देने के लिए अपने सुखों की आहूति दे देती हैं। स्त्री के अकेलेपन और संकीर्ण स्वार्थ वृत्ति से उत्पन्न मानसिकता के कारण घर के उजडने की कहानी को साकार करने में लेखिका को अच्छी सफलता मिली है। इस उपन्यास की एक और प्रमुख पात्र है, नसीमा जिसके आसपास सम्पूर्ण उपन्यास की कहानी धूमती हैं। नसीमा एक स्त्री के अधिकारों के लिए समस्त समाज से भिड जाती है, फिर चाहे अंजाम जो भी हो। नसीमा की इस विद्रोही स्थिति का अंकन लेखिका ने *'कोरजा'* उपन्यास में बखूबी किया है।

'गिरीश अस्थाना' के उपन्यासों के अर्न्तगत उसके पात्रों की दृष्टि से इस अवधि का एक श्रेष्ठ उपन्यास है। इसका प्रमुख केन्द्रीय पात्र सुमान्त है जो उद्योगपतियों के आपसी दाँवपेंच, उठा-पटक और तिकडम व भ्रष्टाचार का विद्रोह करता है। सुमान्त पात्र मध्यम वर्ग से सम्बन्ध रखने वाला है। उसके पिता रेलवे ऑफिस में काम करते हैं। सुमान्त के घर में व बाहर उसने आस-पास की जिन्दगी घुटन भरी व तनावपूर्ण रहती है। और उसी समय दूसरे विश्वयुद्ध ने भी अपना विकराल रूप धारण कर लिया। घर के विष भरे वातावरण से ऊब कर तथा पेन्टींग द्वारा जीविकोपार्जन की सम्भावना न देखकर वह सेना में भर्ती हो जाता है। इसके बाद उसकी असल जिन्दगी की शुरूआत होती है। सुमान्त दुश्मनों के विद्रोहों का डटकर सामना करता है। बुद्धिजीवी वर्ग के लिए यह चुनौती आज के बाजारवाद की दुनिया में कितनी कठिन होती जा

रही है। इसी ओर 'गिरीश अस्थाना जी' ने अपने उपन्यास के पात्रों में माध्यम से ध्यान आकर्षित किया है।

'मृदुला गर्ग' के औपन्यासिक पात्रों में आक्रोश की भावना दिखाई पडती है। 'मृदुला गर्ग' के सभी उपन्यासों में आधुनिक स्त्री पात्रों को लिया गया है, जो अपनी अस्मिता को बचाने के लिए समाज से संघर्ष करती है। *'उसके हिस्से की धूप'* (१९७५) उपन्यास की केन्द्रीय पात्र मनीषा के इर्द-गिर्द ही कहानी धूमती है। मनीषा के मन में उठने वाले भावों, अर्न्तमन की सोचों, प्रतिक्रियाओं का वर्णन, विश्लेषण द्वारा किया गया है। लेखिका ने मनीषा पात्र के रूप में एक सर्जनशील व्यक्तित्व को उभारने का प्रयत्न किया है।

'श्री लाल शुक्ल' के उपन्यासों में *'सीमाएँ टूटती है', 'मकान', 'पहला पडाव'* आदि के पात्रों में आक्रोशीत विद्रोह दिखाई देता है। *'सीमाएँ टूटती है'* १९७३ ई. उपन्यास एक अपराध और रोमांस मिश्रित कहानी है। इस प्रसंग में मुकर्जी, विमल से आक्रोश में आकर कह रहे हैं कि...

> **" आपको यह खेल बन्द कर देना चाहिए। आप बूढें हो रहे हैं, वह आपकी लडकी की उम्र की है।" " विमल ने कहा- 'आप मेरे लडके की उम्र के हो सकते हैं पर इसी से आपको लडका नहीं बना सकता, आप को झाँपड मार कर बाथरूम की और नहीं ढकेल सकता।"** *(सीमाएँ टूटती है, पृ. १२)*

इसमें विमल और मुखर्जी एक-दूसरे के साथ चाँद को लेकर गुस्से में वार्तालाप कर रहे हैं। मुखर्जी यह कह रहे हैं, कि चाँद तुम्हारी बेटी की उम्र की है उससे नहीं मिला करो। राजनाथ और नीला भी विमल को यही समझाना चाहती हैं। अत: 'श्री लाल शुक्ल' के अन्य उपन्यासों में भी इसी तरह व्यंग्य व आक्रोश दिखाई पडता है।

'मंजूर एहतेशाम' के उपन्यास *'सूखा बरगद'* १९८६ ई. उपन्यास में भी विद्रोह दिखाई देता है। इसका प्रमुख केन्द्रीय पात्र अब्दुल वहीद खाँ के रूप में उपन्यास ने एक ऐसे पात्र की रचना की है, जो धर्म की संकीर्णताओं से अलग, उदारता, राष्ट्र के प्रति प्रेम और मजहबी धर्मों पर इंसानियत को तरजीह देने वाला बुद्धिजीवी है। अब्दुल समस्त जीवन भर कट्टरपन्थियों के विद्रोह से जूझता रहा। अब्दुल ने कभी भी कट्टरपन्थियों के सामाजिक और आर्थिक दबावी

विद्रोह के सामने हार नहीं मानी। वह धर्मों से परे द्वेष-रहित समाज की स्थापना का सपना पूरा करना चाहते हैं। बस यही इस उपन्यास का उद्धेश्य है। *'सूखा बरगद'* उपन्यास का एक अन्य पात्र सुहेल है, जो साम्प्रदायिकता के भटकाव में आ जाता है, अब्बू उसे उस साम्प्रदायिक से निकालने की भरपूर कोशिश करता है। धार्मिक कट्टरता से उत्पन्न नफरत की जटिलता को उपन्यासकार ने बडे सांकेतिक रूप में प्रस्तुत किया है। सुहेल के भटकाव को उपन्यासकार ने आम मुसलमान के भटकाव के रूप में प्रस्तुत किया है। इस उपन्यास में स्वतन्त्रता प्राप्त करने के पश्चात् की दुखद व संकट की स्थिति का अंकन किया है। इसमें साम्प्रदायिक सम्बन्धों की समस्या को पात्रों की गहरी अनुभूति के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

'रमेशचन्द्र शाह' के उपन्यास *'किस्सा गुलाम'* १९८६ ई. में दलित व गरीब मजदूर के घर में जन्में एक संवेदनशील पात्र कुन्दन की आक्रोश और विद्रोह की भावना का चित्रण किया गया है। *'किस्सा गुलाम'* उपन्यास के नाम से ही पता चल रहा है, कि यह उपन्यास एक गुलाम की कहानी कह रहा है। कुन्दन इसमें गुलाम का चरित्र निभा रहे हैं। कुन्दन पात्र दलित समाज में उत्पन्न हो रही राजनीतिक चेतना और सामाजिक विद्रोह का प्रतिनिधित्व करता है। वह समाज की उस व्यवस्था को भी नकारता है, जो शूद्र और ब्राह्मण के विवाह में अवरोध बन जाए। कुन्दन पात्र के अनुसार ब्राह्मण लडकी शूद्र लडके से विवाह कर सकती हैं। जाँति-पाँति उनके मध्य-बाधा नहीं बने। इस विद्रोह भरी मानसिकता से चलते वह भारत से कहीं दूर विदेश में जा बसता है। लेखनीय विज़न में कुन्दन का विद्रोह एक प्रतिक्रियात्मक विद्रोह है।

'शाल्मली', 'ठीकरे की मँगनी' आदि उपन्यासों के कथानक के पात्र की विद्रोही स्थिति से गुजरते हैं। 'नासिरा शर्मा' ने ये उपन्यास मुख्यता आधुनिक भारतीय नारी की स्थिति पर लिखे हैं। 'शाल्मली' उपन्यास में उसकी केन्द्रीय पात्र शाल्मली को ही रखा गया है, जो नारी नियति का प्रतिनिधित्व करती है। शाल्मली हिन्दू परिवार से सम्बन्ध रखती है। हिन्दू समाज की शाल्मली आज की पति -पत्नी की उस नारी संहिता में जकडी हुई हैं, जिसमें पति को सर्वोच्य स्थान दिया जाता है। पति शाल्मली को सिर्फ एक वस्तु समझता है। उसका पति नरेश उसे बार-बार स्त्री होने पर प्रताडित करता है। 'नासिरा शर्मा' ने शाल्मली और नरेश के वैवाहिक जीवन की घुटन और मानसिकता का, नरेश की कमीनी सोच और हरकतों का अंकन किया है। 'नासिरा शर्मा' *'शाल्मली'* के द्वारा यह बतलाना चाहती है, कि धैर्य और विवेक के साथ अपने अधिकारों

की सुरक्षा करते हुए परिवार को टूटने से बचाने के लिए विद्रोह करना जरूरी हैं। शाल्मली पात्र का चरित्र उनकी इस वैचारिक दृष्टि का उदाहरण है। शाल्मली एक स्थान पर कहती है कि...,

> **"मेरा विश्वास न घर छोडने पर है न, अपने को किसी एक के लिए स्वाह करने में है। मैं तो घर के साथ और औरत के अधिकार की कल्पना भी करती हूँ और विश्वास भी ।"** *(ठीकरे की मँगनी, पृ.२५)*

'नासिरा शर्मा जी' के दूसरे उपन्यास *'ठीकरे की मँगनी'* १९८९ ई. में मुस्लिम परिवार की संवेदनाओं का वर्णन किया गया है। यह उपन्यास मुस्लिम रिवाज से जुडा हुआ है। जिस मान्यता के अनुसार जन्म लेते ही किसी भी लडके का विवाह किसी भी लडकी के साथ कर दिया जाता है। यह भी एक रिवाज़ है, जिसे बरसों से बस निभातें चले आ रहे हैं। इनका केन्द्रीय पात्र महरूख का जीवन भी इसी मान्यता से शुरू होता है। महरूख का विवाह जन्म लेते ही कर दिया गया था, पच्चीस साल वह इसी मनहूस छाया में व्यतीत कर देती है। महरूख का मंगेतर रफत एक अवसरवादी व संवेदनाशून्य युवक है। रफत भौतिक सुख-सुविधाएँ प्राप्त करने के लिए किसी भी हद तक जा सकता है। वह इन्सानी भावनाओं को ठेस पहुँचाने में भी किसी संकोच का अनुभव नहीं करता। महरूख को वह कई बार अपनी स्वार्थ सिद्धी के लिए ठेस पहुँचा चुका है। यह हादसा उसके व्यक्तित्व को हिला देता है। लेकिन महरूख टूटती नहीं है, बल्कि अपने लिए रफत से अलग एक नया व स्वतन्त्र मार्ग अपनाती है। वह रफत के दूसरी बार निकाह के प्रस्ताव का विद्रोह कर गाँव के लोगों की सहायता और लोक सेवा को ही अपने जीवन जीने का लक्ष्य बना लेती है। इस प्रकार हम देखते हैं, कि 'नासिरा शर्मा' के औपन्यासिक पात्रों में विद्रोह एवं आक्रोश की स्थिति दिखाई देती है।

'शिवप्रसाद सिंह' का *'शैलूष'* १९८९ ई. उपन्यास भी प्रसिद्ध उपन्यास है। इसके पात्र नट है, जो कबीलाई जीवन से सम्बन्ध रखते हैं। कथानक का यह विषय अन्य उपन्यासकारों के कथानक से थोडा अलग है। इसमें सावित्री एक नट की पत्नी है, जो उच्च वर्ग के दमन और शोषण से नटों की मुक्ति का संघर्ष छेडती हैं और सावित्री इस विद्रोह में अन्तत: सफल भी होती है। सावित्री मानवीय अधिकारों की प्रतिनिधि बनकर यह विद्रोह करती है। इस संघर्ष में तीव्रता इसलिए भी आ जाती है, कि उच्च जाति का नेता घुरफेमन तिवारी सावित्री कें विद्रोह को अपना जातिगत अपमान समझता है। अन्तत: जीत नट समाज की ही होती है।

'भीष्म साहनी जी' के उपन्यासों में हमें सर्वाधिक विद्रोही भावना की झलक दिखाई देती है। उनके उपन्यास *'तमस'* १९७३ ई. के पात्र भी विद्रोही स्थिति में जान पडते हैं। उपन्यास के एक पात्र इकबाल सिंह को इकबाल मुहम्मद बनाए जाने तथा सैदपुर के सिक्खों और दगाईयों के मध्य विद्रोह के प्रसंग धार्मिक उन्माद, क्रूरता और आत्मबलिदान के उदाहरण है। नत्थू स्वयं सुअर नहीं मारता बल्कि रूपयों का लालच देकर अंग्रेजों के कारिन्दे मुरादअली द्वारा मरवाया जाता है। मुराद अली हिन्दू-मुस्लिम दंगो का फायदा अंग्रेजी हुकूमत के साथ मिलकर लेना चाहता है। सुअर मरवाकर उसे मस्जिद की सीढीयों पर फिकवा दिया जाता है। तत् पश्चात् यह हिंसा भयंकर विद्रोह का रूप ग्रहण कर लेती है। ऐसे समय कुछ पात्र ऐसे भी है, जिनके द्वारा इन्सानियत को जिन्दा रखा जाता है। इसमें एहसान अली और राजो व करीमखान ये सभी इतने नेकदिल पात्र है, जो आक्रोश के सभी दबावों को सहन करते हुए अपनी दोस्ती व इन्सानियत की लाज रखते हैं। *'तमस'* उपन्यास के एक प्रसंग में सोहन सिंह समिति के लोगों से कुछ इस तरह कह रहा है, -

> **" यह सब अंग्रेजों की शरारत है। सोहन सिंह की आवाज और ऊँची हो गयी थी, हमारा लाभ इसी में हैं कि फिसाद् न हो। सुनो भाईयों, शहर से आज कोई बस नहीं आयी। रास्ते कटते जा रहे हैं। यह सारा इलाका मुसलमानी है। अगर गाँव पर बाहर के लोगों ने हमला कर दिया तो तुम कहाँ तक उनका मुकाबला कर सकोगें? कुछ यह भी सोचो, कटुता से तुम्हें कितनी मदद् मिल जायेगी? तुम ऐंठ किस बात पर रहे हों ?"** *(तमस, पृ. ८०)*

अतः सोहनसिंह समेत अनेक सिक्ख गुरूद्वारे में आक्रमण से बचने के लिए बातें कर रहे हैं। सोहनसिंह भी आक्रोशित होकर भडक जाता है और समिति सदस्यों को भला-बुरा कह देता है। *'तमस'* उपन्यास के अलावा भी 'भीष्म साहनी जी' के उपन्यासों में विद्रोह दिखाई देता है। *'बसन्ती'* १९८० ई. उपन्यास की पात्र बसन्ती भी अन्धे समाज का डट कर विद्रोह करती है। बसन्ती उपन्यास महानगरीय परिवेश में बन रही कोलेनियों के आसपास बसी छोटी मजदूरों की बस्तियों का चित्रण किया है। बसन्ती पात्र की वर्तमान व्यवस्था से अपना हक मांगने की जद्दोजहद पूरे उपन्यास में प्रस्तुत की गई है। बसन्ती उस भारतीय नारी का प्रतिनिधित्व करती है जो व्यवस्था के अनेक प्रकार के शोषण की शिकार है। पर बसन्ती शोषण की शिकार होकर भी हार नहीं मानती। वह पूरी सामाजिक व्यवस्था का विद्रोह करती है तथा उससे अविरत लडती है।

इस प्रसंग में चौधरी अपने ईमान पर आई विपत्ति समझकर एक राजपूती युवक से भीड जाते हैं और कहते हैं, कि

> **" उठा ले, उठा ले और दूर हो जा हमारी आँखो से। चौधरी का हाथ झटक कर इतना भर ही कह पाया था कि दूसरे ही क्षण वह अपने आप जैसे हवा में उठ चुका था? राजपूत की दाई बाँह चौधरी के घुटनों के नीचे थी, और बाई बाँह गरदन के नीचे, और वह उचककर स्वयं बूती पर खडा हो गया था, और चौधरी भोचक्का सा मुहँ से कुछ बोले, क्षणभर के लिए स्कूल की दीवार पर और फिर धडाम से नीचे दीवार की दूसरी और जमीन पर पडा था? गनीमत रही कि नीचे जमीन नरम थी, बारिश के कारण पोली थी, पर फिर भी चौधरी की आँखो के सामने दिन की रोशनी में भी चाँद-सितारे धूम गए। मैं तेरे बाप बराबर हूँ, बेहया अपने बाप को भी उठाकर पटकेगा, हरामी की औलाद.....।"** *(बसन्ती, पृ. ४८)*

अत: इस प्रकार हमने अध्ययन किया कि *'बसन्ती'* उपन्यास के पात्र चौधरी राजपूती युवक का विद्रोह कर रहे हैं। बसन्ती व्यवस्था का विद्रोह करती है। बसन्ती, चौधरी, श्यामा, बोधराज, बुलाकी मूलराज, गणेशा, रूम्मी, दिनू, आदि पात्रों में विद्रोह एवं आक्रोश दिखाई देता है। बसन्ती, सूरी के यहाँ शहर में आकर काम करने लग जाती है तभी एक दिन उसका पिता वहाँ आ जाता है तो सूरी उसके स्वार्थी पिता से कुछ इस प्रकार कहता है ...

> **"तुमने तो कभी यह भी नहीं जाना कि जीती है या मर गई। क्या हम भी इसे दर-दर की ठोकरें खाने के लिए छोडे देते ?" सूरी की इस बात पर बसन्ती के पिता चौधरी ने कहा कि –**
>
> **"लडकी को शहर की हवा लग गई है साहिब, हाथ बाँधे-बाँधे चौधरी ने कहा, हमारे घर में और भी लडकियाँ है, सब अपने अपने बाल-बच्चों के साथ घरों में बसी है, यहीं एक कुलच्छणी....।" इसमें बसन्ती के पिता चौधरी, अपनी बेटी को लेने आया है और जिसके यहाँ उसकी बेटी काम करती है उसके सामने अपनी बेटी का भला-बुरा कहता है ।"** *(बसन्ती, पृ. ११०)*

अतः हमने देखा की इस उपन्यासों के पात्रों कि मनोस्थिति की विद्रोही भावना से ग्रसित है। फिर चाहे विद्रोह समाज के लिए हो या फिर स्वयं अपना अस्तित्व बचाने के लिए हो। 'भीष्म साहनी', 'विवेकी राय', 'शिवप्रसाद सिंह', 'कृष्णा सोबती', 'विश्वम्भर नाथ उपाध्याय' सहित अनेक उपन्यासकारों के पात्रों में विद्रोह एवं आक्रोश देखने को मिलता है।

५.३ संवादों में व्याप्त आक्रोश

सन् १९७१ ई. से १९९० ई. के मध्य के उपन्यासकारों ने अनेक विद्रोही उपन्यासों की रचना की, जिनका अध्ययन हम पहले कर चुके हैं। उपन्यासों के पात्रों द्वारा जो संवाद लिखे गए हैं उनमें भी विद्रोह एवं आक्रोश की भावना उजागर हुईं हैं। इसका अध्ययन हम नीचे करेगें। संवाद योजना उपन्यास का मूल उपकरण है। सैद्धान्तिक दृष्टि से तो उपन्यास में पात्र, कथानक, भाषा शिल्प सभी तत्व परस्पर सम्बद्ध होते हैं, परन्तु व्यवहारिक दृष्टिकोण से संवाद योजना का सम्बन्ध पात्रों से अधिक घनिष्ट होता है। उपन्यास में नियोजित पात्रों के पारस्परिक वार्तालाप के लिए ही इस तत्व का समावेश उपन्यास में किया जाता है। पात्रों तथा उपन्यास के अन्य तत्वों की भाँति ही संवाद के क्षेत्र में भी पर्याप्त विविधता मिलती हैं। उपन्यास में संवाद योजना के माध्यम से घटनाओं में गतिशीलता आती हैं, जिनका नीचे विवरण दिया जा रहा हैं।

'अमृता प्रीतम' के उपन्यास *'कोरे कागज़'* १९८२ ई. के संवादो में व्याप्त आक्रोश एवं विद्रोह का भाव देखिए –

> **"मैं पण्डितों की बातों को झूठी कहने का पाप नहीं करती, पर वैसे कहती हूँ कि आदमी सारे कर्म-कांड इन्हीं से पूछकर करने-लगे तो स्वभाव वहमी हो जाय..... फिर तेरी तो हँसने-खेलने की उम्र है, तू क्यों इन बातों में पडता है ? मन लगाकर पढा कर।"** *(कोरे कागज़, पृ. ४७)*

इन संवादो में रक्खी मौसी पंकज से निधि महाराज के बारे में कर रही हैं। मौसी का कहना है, कि, अगर हम पंडितों की सभी बातों पर विश्वास करने लगे तो हमारा मन वहम से भर जाएगा। अत: मौसी पंकज के सामने पंडितों का विद्रोह कर रही हैं ।

'श्री लाल शुक्ल' के उपन्यास 'सीमाएँ टूटती है' के संवाद देखिए –

> **"प्रोफेसर का यह गंदा रोमान्स एक अकेली घटना नहीं है, इस देश में सभी जगह नौजवानों को अपने स्वाभाविक प्रेम के क्षेत्र से इसी तरह देश-निकाला दिया जाता है। अच्छी मोटर, अच्छी शराब, अच्छा पैसा, अच्छी प्रेयसी – यह सब यहाँ कुछ**

ही लोगों को मिलता है। और यह भी ज्यादातर चालीस की उम्र पार करने के बाद।"

"बात बहुत सही है मोशाय, पर सिर्फ मेरे लिए, तुम्हारे लिए नहीं।"

"यह हम सब के लिए सही हैं।"

"नहीं ,मोशाय, तुम्हारे लिए नहीं। तुम्हे तो अपनी लैब में रोज एक नया एक्सपेरिमेन्ट करने की चीज मिली ही हुई है ।"

"वल्गर मत बनो।"

"बिगड रहे हो मोशाय ? तब तो बिल्कुल ही साबित हो गया कि मैं ठीक कहता हूँ ।" *(सीमाएँ टूटती है, पृ. ८४)*

इसमें मुकर्जी सम्पादक से प्रोफेसर के गन्दे रोमान्स पर आक्रोश दिखा रहे हैं और प्रोफेसर को गलत ठहराते –ठहराते दोनो एक–दूसरे पर भी विद्रोह एवं व्यंग्यो की बौछार करने लगे हैं।

"कल तक लाल फीते के बारे में पढा ही करती थी आज देख भी लिया।"

"....नहीं, मिस चन्द्रा, विवेक चले या न चले, मैं तुम्हें नहीं छोड पाँउगा।"

"नौजवान लडके, तुम्हारा शिष्टाचार कहाँ चला गया है ?" वह उसे बुजुर्ग मास्टरनी की आवाज में अंग्रेजी में डाँट रही थी, " मैं तुम्हें थैंक्यू कह रही हूँ, तुम उसे स्वीकार तक नहीं करते ?"

"सॉरी मैडम, आप की शक्ल देखते ही शिष्टाचार दुम दबाकर भाग जाता है ।"

"अभी फिर हमें उस भट्टी में जलना पडेगा, लाल फीते का जहर अभी पीना बाकी है क्या ?" *(सीमाएँ टूटती है, पृ. १२३)*

"तुम मत चलना। यहीं लाउंज में बैठना, मैं मिट्टी में जाकर घंटे –भर में निकल आऊँगा।"

"तुम ? बहुत दोस्ती दिखाने की कोशिश मत कीजीए, मुझे आप कहां कीजीए समझें आप ?" *(सीमाएँ टूटती है, पृ. १२६)*

इस संवाद में मिस चन्द्रा और नौजवान युवक के मध्य वार्तालाप चल रहा है। मिस चन्द्रा नौजवान की बातों से सहमत नहीं है और उसकी बातों का विद्रोह कर रही हैं।

'श्री लाल शुक्ल' के दूसरे उपन्यास *'आदमी का जहर'* के संवादों के कुछ उदाहरण देखिए –

"तो क्या आप इन्हें गिरफ्तार कर रहे हैं? सिद्दीकी कुछ सोचता रहा। फिर बोला, आप यह भी ठीक ही समझे हैं।"

रूबी को जैसे विश्वास नहीं हो रहा है। उसने कहाँ, "क्या सचमुच आप अब मुझे घर न जाने देंगे।" "मुझे अफसोस है।पर मुझे अब आपको थाने पर ही रखना होगा। हो सकता है, अजीतसिंह को जहर आपने न दिया हो। पर पूरे वाकिआत आप के खिलाफ पडते हैं और मामले की जाँच पूरी होने तक आपको हमें गिरफ्तारी में रखना पडेगा। इसकी सूचना आपके पति को या जिसे बतायें उसे दे दी जायेगी।"

इन्सपेक्टर सिद्दीकी रूबी को गिरफ्तार करने को कहता है। सिद्दीकी के अनुसार रूबी के खिलाफ जितना भी सबूत मिला है वह उसका जुर्म साबित करता है। उनके अनुसार अजीतसिंह को हो सकता है, रूबी ने ही जहर पीलाया हो इसलिए वह उसे थाने में ही रखना चाहते हैं किन्तु रूबी व उसका रिश्तेदार उसका विरोध करते हैं।"
(आदमी का जहर, पृ. ५७)

" इस शान्तिप्रकाश ने अपनी जेब से चन्दा देकर, जन क्रान्ति को साल भर जिन्दा रखा था।'

"इसमें बुरा ही क्या है ? उमाकान्त ने कहा, वे हँसने लगे। उनमें से एक बोला, आप तो इस तरह पूछ रहे हैं जैसे आपको कुछ पता ही नहीं, फिर रूक कर वह खुद

ही कहने लगा, पर आपको पता हो की कैसे सकता था ? तब तो आप कानपुर में रहे होंगे ?" *(आदमी का जहर, पृ. ११५)*

"दूसरे पत्रकार ने कहाँ, वह जो पार्वती महिला आश्रम है न, शहर के रईसों का चकला उसकें खिलाफ जनक्रान्ति में कई साल पहले न जाने धमकियाँ छपी थी। अजीतसिंह हर अंक में बराबर यही लिख देता था, कि अगले अंक में महिलाओं के उद्धार की एक संस्था के बारे में भयंकर, पर सत्य घटनाएँ छपने वाली हैं। किन्तु वे भयंकर, पर सत्य घटनाएँ किसी अंक में नहीं छपीं। आप जानते हैं कि क्यों? इसलिए कि उन दिनों जनक्रान्ति गरीबी में घिसट रहा था और तभी उसे जिन्दा रख कर मजबूत बनाने का ठेका शान्तिप्रकाश ने ले लिया था।"*(आदमी का जहर, पृ. ११६)*

इन संवादो में अजीतसिंह की मौत की गुत्थी को सुलझाने का प्रयत्न हो रहा है। अजीतसिंह जनक्रान्ति नामक पत्रिका चलाता था, जिसमें उसने पार्वती महिला आश्रम में हो रहे अत्याचार के बारे में लिखना चाहा किन्तु फिर सहसा उसका खून कर दिया गया। कई पत्रकार जो उमाकान्त के घनिष्ठ थे उन्होंने उमाकान्त को शान्तिप्रकाश की काली करतूत के बारे में बताया। फिर उमाकान्त व पत्रकारों ने मिलकर उसके भाषण का जमकर विरोध किया। यहाँ विद्रोह परिलक्षित होता है।

'मन्नू भंडारी' के उपन्यास 'महाभोज' के संवादो के उदाहरण देखिए –

"लडका नक्सली था ?"

"नहीं नक्सलियों की तो आलोचना करता था। आलोचना इसमें प्रश्न से अधिक अविश्वास की ध्वनि थी।"

"उनके काम करने के तरीको को वह गलत मानता था।"

"काम ? काम तो वह शायद वह कुछ करता ही नहीं था।"

"क्यों, सुना है हरिजनों और खेत-मजदूरों को मालिक के खिलाफ भडकाया करता था। नक्सली भी तो यही सब करते हैं।"

"भडकाया नहीं करता था, सर..... उन्हें केवल अवेयर करता था अपने अधिकारों के लिए। जैसे सरकार ने जो मजदूरी तय कर दी है वह जरूर लो, नहीं दे तो काम मत करो। पर झगडा-फसाद या मार-पीट के लिए वह कभी नहीं कहता था ?.... इसी बात में वह शायद नक्सलियों से अलग भी था।" *(महाभोज, पृ.९६)*

इसमें पुलिस-दारोगा सक्सेना एक नवयुवक की मौत की तफतीस करने आए हैं और महेश से सवाल-जवाब करते हैं। महेश मरने वाले युवक को अच्छे से जानता था। सक्सेना जब उसे नक्सली करार देता है तो वह आक्रोश से भर उठता है, यह उसके बारे में यह स्पष्ट करता है, कि वह नक्सली नहीं था बल्कि वह तो सोए हुए लोगों को अपने हक के लिए जाग्रत करता था। सामाजिक व्यवस्था व पुलिस के प्रति विद्रोह इस संवादो में परिलक्षित होता है।

"होता है कभी -कभी ऐसा भी, एक की मूर्खता का फल दूसरे को भुगतना पडता है।"

"और आप हैं कि इसी मूर्ख का पल्ला पकडे हुए हैं। मारा है गरीबों को तो भुगतने दीजिए सजा। नहीं चाहिए हमें जोरावर के वोट। अब इसके वोटें के चक्कर में हरिजनों के सारे वोट तो गए ही..... गाँव के दूसरे लोगों के वोट भी नहीं मिलेंगे।"

"सारा हिसाब लगाकर देख लिया है मैंने, ले डूबेगा, जोरावर का साथ, माथे पर कलंक और आत्मा पर बोझ सो अलग।" *(महाभोज, पृ.१५)*

इसमें बिसू नामक युवक के बारे में लखनसिंह दा साहब से आक्रोश भरे शब्दों में भला-बुरा कह रहे हैं। दा साहब को कहते हैं, कि आप भी क्यों मूर्खता का साथ दे रहे हैं। दा साहब को जोरावर का साथ नहीं देना चाहिए, अगर उसने किसी गरीब की हत्या की है, तो जोरावर को सजा होनी ही चाहिए। उसे आप बचाने का प्रयत्न नहीं करे। वह जोरावर के दोषी होने पर, उसके संवादो में उसके प्रति विद्रोह दिखाई देता है।

'चन्द्रकान्ता' द्वारा प्रकाशित उपन्यास *'ऐलान गली जिन्दा है'* (१९८४) के संवादो में भी विद्रोह व आक्रोश दिखाई पडता है। इसके उदाहरण निम्न है –

> **"पता नहीं कहाँ से बाईस–चोबीस साल की लडकी उठाकर लाया है। कोई दुखियारी होगी। नहीं तो कौन इस कब्र में लटके पंडित के गले में बाँहे डाल देती?"**
>
> **"गले में बाँहे डालने की एक ही कहावत है बिरादर, साठे पर पाठा है अपना पंडित।"**
>
> **"अनवर मियाँ मौज में आकर ढाढी निचोंडते हुए बोले, अब देखो, बुढापे का इश्क क्या रंग लाता है।"**
>
> **"मुझे तो लगता है पंडित उधर किसी साधु–तांत्रिक से कोई जडी–बूटी आजमा कर आया है नहीं तो इतनी हिम्मत...... ?"** *(ऐलान गली जिन्दा है, पृ. ८९)*

'चन्द्रकान्ता' के उपन्यास *'ऐलान गली जिन्दा हैं'* , में व्याप्त संवादों में आक्रोश की भावना दिखाई देती है। जैसा कि इस प्रसंग में देखिए अनवर मियाँ, पंडित को खरी–खोटी सुना रहे हैं। अनवर मियाँ अन्य लोगों के साथ पंडित के ऊपर आक्रोश जाहिर कर रहे हैं। उनके अनुसार उसने एक कम उम्र की लडकी को नहीं खरीदा बल्कि उसकी गरीबी एवं विवशता को खरीद लिया है, वरना तो कौन कम उम्र लडकी बुढ्ढे आदमी से विवाह करने को तैयार होगी। वह लडकी जरूर ही किस्मत की मारी होगी, जिसका कोई अपना नहीं होगा। उनके अनुसार पंडित उसे रूपए देकर खरीद कर लाया है। गाँव में अन्य लोग भी उसकी हाँ में हाँ मिला रहे हैं।

इन संवादो में अनवर मियाँ, महीपा, दयाराम मास्टर ,संसारचन्द आदि पात्र आपस में कबाईली आक्रमण के बारे में बातें कर रहे हैं।

> **"बस। फिर क्या था। लंगर में उबलती देंगे आँच पर धरी–धरी जल गई लोग–लुगाईयाँ, भरी थालियाँ छोड नंगे पैर अपने–अपने घरों में भाग गई। दस मिनट में भरा शामियाना खाली हो गया। वह हाय–हाय मची कि पूछो मत। बेचारे जियालाल का परिवार एक कमरे में यों चुपचाप इकठ्ठा हो गया, ज्यों घर में ताज़ा मौत हो गई**

हो। क्या करें, सभी सोच रहे थे। किसी की बेटी मुहरा में, किसी का भाई बारामूला में। ऐसे में जिया की बेटी की शादी की बात कैसे सोची जा सकती थी? मेंहदी लगी लडकी अपने भाग्य को रो रही थी। स्त्रीयाँ सहमी हुई थी और पुरूष लोग प्लान बना रहे थे, कबाईली आएँगे तो क्या करें? स्त्रीयों का धर्म भ्रष्ट नहीं होने देंगे, चुपचाप संखिया खिला देंगे। पुरूष तो मर-मिटने को तैयार हो ही गए थे। कुछ जवान गबरू गहनों की पोटलियाँ बाँध कूच करने को तैयार हो गए थे, पर जाते कहाँ ? चारों तरफ तो दुश्मनों का घेरा था।" *(ऐलान गली जिन्दा है, पृ. ४४)*

इसमें सभी पात्र मिलकर कबायली आक्रमण के समय उत्पन्न मानसिक विद्रोही स्थिति के बारे में बातें कर रह हैं। शादी के माहौल में सभी लोग सहमे व डरे हुए नजर आने लगे और घर में मेहंदी लगी लडकी अपनी किस्मत को रोने लगी ,कि ये सब क्या उसके विवाह के समय ही होना था। सभी पुरूष लोग अपनी स्त्रियों की मान-मर्यादा बचाने के लिए आक्रमणकारियों से लडने को तैयार हो गए। इसमें उबलती, आँच, हाय-हाय, सहमी, भ्रष्ट, मर-मिटने, कूच, दुश्मनों आदि संवादो में आक्रोश स्पष्ट रूप से दिखाई पडता है।

"१९३८ ई में नेशनल कान्फ्रेंन्स बनी। दयाराम मास्टरजी खून-खराबे की बात दबाते हुए बोले। जायज़ भी यही था। लोगों का क्या भावुकता में यह भी कह देंगे, फलाँ का उसमें हाथ है, फलाँ ने इस वजह से यह काम किया, बेकार। चार जनों के बीच में मजहब और धर्म को लेकर बहस-मुबाहसा नहीं हो क्या दयाराम मास्टरजी नहीं जानते, सीताराम पटवारी की क्या दूर्दशा कर दी थी, मजहब के मारिन्दों ने? उसका साला जब सीताराम का शव लेने गया तो पोटली में गोश्त के कुछ टुकडे लेकर ही लोट आया था।" *(ऐलान गली जिन्दा है, पृ. ४८)*

इस प्रसंग में दयाराम मास्टरजी अपने दोस्तों से राजाओं के शासनकाल व अंग्रेजीकाल का वर्णन कर रहे है। मास्टरजी संसारचन्द के प्रश्न का उत्तर देते हुए कह रहे हैं, कि हिन्दू और मुसलमान तो पहले पानी में नमक की तरह धुले-मिले हुए रहते थे, किन्तु अंग्रेजी शासन ने धार्मिक फूट पैदा कर दी, जिससें लोग आपस में एक-दूसरे को मरने-मारने पर उतारू हो गए। मजहब के कारिन्दों ने सीताराम पटवारी की बहुत अधिक दुर्दशा कर दी थी। उसका साला

उसके शव को सही–सलामत नहीं बल्कि अनेक टुकडों में बटी गठरी को लेकर आया। सभी के अन्दर अंग्रेजी शासन के प्रति धार्मिक आक्रोश दिखाई देता है।

'भीष्म साहनी' का उपन्यास *'तमस'* आक्रोश एवं विद्रोह की दृष्टि से सर्वोत्तम है। *'तमस'* उपन्यास में कुछ तो पात्रों की ऐसी सृष्टि हुई है, जिनके संवादों में विद्रोह स्पष्ट रूप से दिखाई देता हैं। उदाहरण के तौर पर मौला दाद नामक पात्र गुस्से से तमतमाकर हकीमजी पर चिल्लाने लगे, –

> **''चुप रह कुत्ते, मौला दाद ने चीख कर कहाँ। उसकी आँखे लाल हो रही थी और होंठ काप रहे थे।''**
>
> **''छोडो–छोडो जाने दो, जाने दो यह वक्त झगडा करने का नहीं है।''**
>
> **''जाइए–जाइए हकीमजी, मगर आपके सरपरस्त तो टॉगें पर बैठकर निकल गए है। आपको अकेला छोड गए हैं।''** *(तमस, पृ. ८५)*

इस उदाहरण में मौलादाद साहब और हकीमजी के मध्य किसी बात पर तनाव सा हो जाता है। मौलादाद हकीमजी को यह समझाने का प्रयत्न करते हैं, कि हिन्दू और मुसलमान दोनों एक –दूसरे के दुश्मन नहीं है, बल्कि मुसलमान का दुश्मन तो वह है ,जो हिन्दुओं के तलवे चाटता फिरता है और उनके झूठे रोटी के टुकडों पर पलता है। उनकी इस बात पर मौलादाद साहिब भी उन्हें समझाते हैं, कि यह समय हिन्दू–मुस्लिम झगडा करने का नहीं है, बल्कि अंग्रेजी शासन को अपने हाथ में लेने का है। हमें आजादी को प्राप्त करना है अपने देश को परतंत्रता की बेडियों से मुक्त करना है। बस हकीमजी इसी बात पर मौलादाद साहिब आक्रोश में आ गए और हकीमजी को कुत्ता कहकर बुलाने लगे। उनके संवाद में हकीमजी के प्रति आक्रोश दिखने लगा। उसकी आँखे गुस्से से पिघल कर लाल रंग की हो गई थी। फिर वहाँ बैठे सभी लोगों ने बीच–बचाव किया और दोनों को शान्त किया, कहाँ की यह वक्त हम लोगों के लिए आपस में लडाई का नहीं है बल्कि दिमाग से काम लेने का है। अन्ततः मौलादाद एवं हकीमजी दोनों पात्रों द्वारा कहें गए संवाद विद्रोह से परिपूरित थे।

'तमस' उपन्यास का ही एक अन्य संवाद का उदाहरण देखिए –

"कैसा कहर टूटा है बाबूजी उफ्फो ? कैसी बुरी आग लगी है। उसने कहा।"

"लालजी ने कोई जवाब नहीं दिया। इस पर फतहदीन ने आश्वासन के लहजे में कहा, बेखबर रहो बाबूजी, आपके घर की तरफ कोई आँख उठाकर भी नहीं देख सकता। पहले हम पर कोई हाथ उठाएगा फिर आप पर उठने देंगे।"

"क्यों नहीं - क्यों नहीं पडोसी तो इन्सान के बाजू होते हैं, और फिर आप जैसे पडोसी?"

"आप बेफिक्र रहे ये फिसादी लोग फिसाद करते हैं, शरीफों को परेशान करते हैं। यहाँ सभी को एक ही शहर में रहना है, फिर लडाई-झगडा किस बात का ? क्यों बाबूजी ?" *(तमस, पृ. ११९)*

इस प्रसंग के फतहदीन उसका भाई, उसका बूढा बाप सभी पडौस की छत पर खडे हुए दंगा-फिसाद की आग को देख रहे हैं, तभी उनके पडौस की छत पर लालजी भी ऊपर आये, उन्हें देखकर फतहदीन ने उनसे कहाँ कि देखो तो बाबूजी कितनी कहर भरी आग शहर में लग चुकी है। उसकी इस बात पर फतहदीन ने अपने स्वर में कुछ भी नहीं कहा तो अन्ततः फतहदीन ही लालाजी को आश्वस्त करते हुये बोले, कि आप किसी भी बात की चिन्ता नहीं करे हम आपको कुछ भी नहीं होने देंगे। अगर किसी मुस्लिम ने आप पर हाथ उठाया तो उसे पहले हम पर हाथ उठाना होगा। फतहदीन के अनुसार हम हिन्दू व मुसलमानों को एक ही शहर में एक ही साथ रहना है, फिर भी न जाने कुछ लोग दंगा-फसाद करवाकर आम आदमी को परेशान क्यों करते हैं। इन संवादो में लालाजी फतहदीन के संवादों में दंगाईयों के प्रति आक्रामकता की भावना दिखाई देती है।

अतः हमने अध्ययन किया, कि सन् १९७१ ई. से १९९० ई. के मध्य के बीस सालों के उपन्यासों के संवादों में आक्रोश काफी मात्रा में उजागर हुआ है।